UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180701

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6 | C49R Accession No. G.H. 651

Author चतुर्वेदी, द्वारिका प्रसाद

Titl रानी दुर्गावती | 2008 V-8

This book should be returned on or before the date last marked below.

# रानी दुर्गावती

[ खण्ड-काव्य ]

रचयिता

देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

[ भूतपूर्व सम्पादक 'मंजरी', 'बिजली' आदि ]

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस, लिमिटेड,

प्रयाग

मुद्रक
यूनियन प्रेस,
प्रयाग
[ जनवरी, १९५२ ई० ]

# अपनी बात

त्रिपुरी कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन के समय संवत् १९९६ में 'रानी दुर्गावती' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था। हिन्दी-संसार के समीक्षकों ने उस समय इसका आशातीत स्वागत किया था। इसकी चुनी हुई कुछ पंक्तियों का ग्रामोफोन रिकार्ड ( एफ. टी. ५८८४ ) भी उसी समय तैयार हुआ था और अनेक घरों में अब तक उसके द्वारा रानी दुर्गा की यशगाथा गूँज रही है। मध्यप्रदेशीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा 'मीर पुरस्कार' तथा सी० पी० एण्ड बरार लिटरेरी एकेडमी, नागपुर द्वारा भी इस खण्ड काव्य के प्रथम संस्करण पर एक पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है।

पूरे एक युग के पश्चात् आज 'रानी दुर्गावती' का यह परिवर्द्धित और परिमार्जित संस्करण प्रकाशित होते देख, मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

वीरप्रसूता भारत माता ने अनेक ऐसी वीरांगनाओं को जन्म दिया है, जिनके शौर्य और बलिदान की पावन गाथाओं से भारतीय इतिहास के अध्याय स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। महाकोशल की अमर रानी दुर्गावती भी भारतीय इतिहास में अपना अक्षुण्ण स्थान रखती है।

प्रस्तुत खण्ड काव्य 'रानी दुर्गावती' पढ़कर हमारे देश के नवयुवकों और नवयुवतियों का न केवल चरित्र-निर्माण होगा, प्रत्युत गणतन्त्र भारत के वे अद्वितीय वीर सेनानी भी बन सकेंगे।

मेरा विश्वास है, यह काव्य सुरुचिपूर्ण पाठकों को सन्तोष प्रदान करेगा और हिंदी के काव्य-क्षेत्र में यथोचित स्थान प्राप्त करेगा।

दीपावली,<br>सम्वत् २००८

— देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

# अनुक्रम


| सर्ग | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १—प्रथम सर्ग | .... | ... | १ |
| २—द्वितीय सर्ग | ... | ... | ३१ |
| ३—तृतीय सर्ग | ... | ... | ६१ |
| ४—परिशिष्ट— | | | |
| रानी दुर्गावती (संक्षिप्त इतिहास) | ... | ... | ९५ |
| कुछ शब्दार्थ | ... | ... | ९८ |

# रानी दुर्गावती

'रानी दुर्गावती'

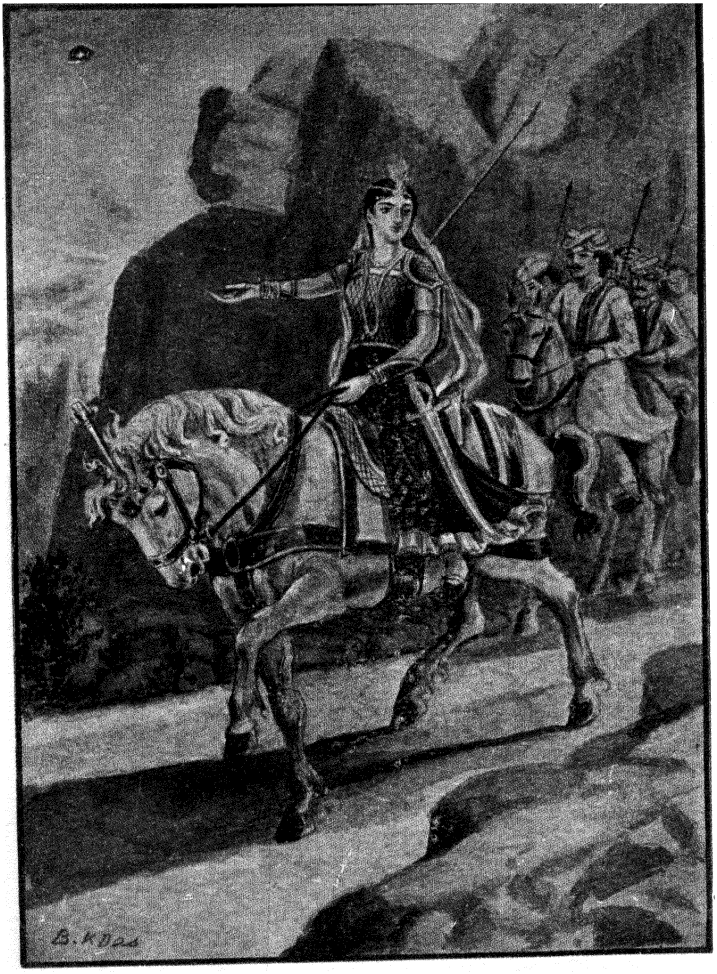


रेवा-तट की विन्ध्य तटी में गढ़मंडले की रानी
तड़प उठी लो, आज देखने किसमें कितना पानी।

(पृष्ठ ५३)

# प्रथम सर्ग

सजा प्रकृति ने अपने हाथों
जिसका अनुपम सुन्दर साज।
पर्वतराज हिमालय का है
जिसके सिर पर मोहक ताज।

रहा कभी सोने की चिड़िया
था जो दुनिया का अभिमान।
सीखा जिससे सारे जग ने
विद्या-बुद्धि, अलौकिक ज्ञान।

आदि काल से जिसका मान,
वीरों की जो भूमि महान्,
रहा सदा जो स्वर्ग-समान्,
धन्य-धन्य वह हिन्दुस्तान!

हुए कर्ण-से दानी जिसमें
और प्रताप, शिवाजी वीर।
ऋषियों की रक्षा करते थे
जहाँ राम के तीखे तीर।

भू का पाप-भार हरने को
नर-पुङ्गव देवों के प्राण,
पावनतम जिस पुण्य भूमि में
जन्मे सदा स्वयं भगवान्।

गङ्गा-यमुना बनीं महान्
जिसका कण्ठहार द्युतिमान,
रजकण जिसके स्वर्ण समान,
धन्य-धन्य वह हिन्दुस्तान!

सूरदास, मीरा, तुलसी के
जहाँ भक्ति के गूँजे गीत।
जहाँ कृष्ण की गीता अब भी
मार्ग दिखाती परम पुनीत।

जहाँ बुद्ध ने दिया शान्ति का
जगती को अक्षय सन्देश।
दिया महात्मा गान्धी ने भी
सत्य-अहिंसा का उपदेश।

चरखा-खादी जिसकी शान,
देव-भूमि जो रही महान्,
जिसका नहीं कहीं उपमान,
धन्य-धन्य वह हिन्दुस्तान।

जहाँ रात-दिन बहा पसीना
खेतों में खपते कुछ प्राण।
उपजाते जो अन्न, चला हल
कहलाते हैं दीन किसान।

नभ से हँसकर सूर्य जिसे नित
निज किरणों का देता दान।
नित्य निशा में इन्दु बिछाता
शीतलता का नव परिधान।

दिया प्रकृति ने जिसको दान,
ऋतुओं का चिर सुखद विधान,
हुए जहाँ अवतार महान्,
धन्य-धन्य वह हिन्दुस्तान!

जहाँ प्रताप, शिवाजी जैसे
वीरों की चमकी तलवार।
जहाँ पद्मिनी रूपवती-सी
हुई रानियाँ थीं सुकुमार।

जहाँ अहल्या, पद्मा, लक्ष्मी
बनीं वीरता की अवतार।
दुर्गावती वहीं उस भू पर
हँसती थी लेकर तलवार।

दुर्गावती ! तुम्हारे गान,
भारत के हैं गौरव मान,
हुआ जहाँ तेरा बलिदान,
धन्य-धन्य वह हिन्दुस्तान !

गूँज रही घर-घर में तेरे,
यश की आज कहानी।
गढ़मँडले की अमर अलौकिक
दलपतिसिंह की रानी !

दुर्गावती ! सदा ही तेरा
वैभव-गीत निराला,
कल-कल स्वर से पावन सरिता
गाती रेवा-बाला।

रम्य अमरकण्टक वन जो था
तेरी लीला का प्रिय धाम,
वही आज रो-रोकर कहता
तेरी गाथा आठों याम।

रेवा-तट पर विन्ध्य तटी में
खड़े खण्डहर अमित उदास।
वायु-झकोरों से नित कहते
तेरे वैभव का इतिहास।

मदनसिंह संग्रामशाह थे
गोंड़-राज्य के नृपति महान्
जिनकी धवल कीर्त्ति प्रतिबिम्बित
इतिहासों में चिर अम्लान।

बसा जबलपुर की गोदी में
आज 'गढ़ा' जो छोटा ग्राम,
वही कभी था इन राजाओं की
गतिविधि का बस केन्द्र ललाम।

इसी गढ़ा के दक्षिण में है
एक पहाड़ी पर छबिमान
मदनसिंह की कीर्त्ति अनोखी
'मदन-महल' अनुपम अम्लान।

बड़ी-बड़ी दो अनगढ़ भारी
चट्टानों पर खड़ा उदास—
देख रहा सदियों से जग का
सुख-दुख, रोदन, हास-विलास।

बावन गढ़ संग्रामशाह के
रहे कभी जो अति गुलजार।
कंचन बरसा, वैभव बरसा,
रहे सुखों के जो आगार।

आज वही सब भग्नप्राय-से
खड़े हुए हैं मौन उदास।
सन्नाटा है व्याप्त उन्हीं में
आज विहंगों का आवास।

दलपतिसिंह ने सजा जहाँ था
राजसुखों का अनुपम साज
और किया था दुर्ग ने जिस
भूमिखण्ड पर सुखकर राज।

सोने के सिक्के चलते थे
जहाँ प्रजा थी सुखी महान्।
हँसता था जिस भूमिखण्ड पर
नित्य नया-सा स्वर्ण विहान।

कण-कण रोता आज वहाँ का
गाता तेरे गौरव-गीत।
भूल सकेगा नहीं स्वप्न में
तेरा अनुपम सुखद अतीत।

श्वेत दूध-सी वे चट्टानें
रेवा-तट पर खड़ीं विशाल,
धुआँधार के आज पार्श्व में
चूम रहीं जो नभ का भाल।

उन पर निर्मित तेरी कुटिया,
भग्न रूप में भी छविमान
रेवा की लहरों के सँग ही
सुना रही अब गीले गान।

आती थी तू रेवा में जब
रानी ! करने मज्जन-पान,
रहती थी इस कुटिया में ही
राजमहल का तजकर ध्यान।

रेवे ! तेरी स्वर-लहरी का
कल-कल मादक-सा मधुगान,
मन्द-मन्द उन्मत्त किन्तु इन
मृदु गीतों का भाव महान्।

विस्मृत भावों का री, अब भी
ध्यान दिलाता आज विशेष।
देख तुझे ही जागृत होता
दुर्गा का साहस सविशेष।

तेरे जगमग वक्षःस्थल पर
लघु तरणी में सुखद विहार
करती थी जब रानी दुर्गा,
हँस पड़ता था यह संसार !

रेवे ! तेरे श्यामांचल की
लहरों की ये रँगरलियाँ
कल-कल ध्वनि से मुसका जातीं
पुलिनों की प्लुत वल्लरियाँ।

कंचन-सी ये ललित लताएँ
हिला-डुला निज विजन-बयार,
उछल-उछल अति मंथर गति से
सजती थीं नव-नव संभार ।

ललित-कलित, गतिमय अयि मधुमयि !
तेरा यह मादक कल गान,
मन्द - मन्द मुख चन्द्र - चन्द्रिका
में सजता था अपने प्राण ।

निखर-निखरकर तव अंचल पर
कला-किरण-माला आसीन ,
रम्य मुकुर-सी दिखती थी,तब
रानी होती थी लवलीन।

दिग-दिगन्त में, कुञ्ज-पुञ्ज में
धुआँधार का ललितोद्यान
दिखता था दुर्गा को पाकर
नंदन-वन-सा ही छबिमान ।

स्वप्न-सदृश पर किया सभी यह
नियति - नटी ने सारा साज ।
रही एक बस सुस्मृति केवल
रानी दुर्गा की ही आज ।

सुधि-विस्मृत री ! रेवा - बाले,
पावनमयि हे देवि महान् !
अयि युग-परिवर्तनमयि ! गा दे
फिर से अपने वे ही गान ।

अयि प्रसादमयि रेवा - बाले !
भारत का कर पुनरुद्धार ;
गृह-गृह, वन-वन मुखरित कर दे
दुर्गा की भरकर हुङ्कार ।

भारत के घर - घर में खेले
दुर्गा अपना ले अवतार ।
जीवन के अभिशाप मिटें ये,
मंगलमय हों सब व्यापार ।

सदियाँ बीतीं, गढ़मँडले में
अतुलित वैभव था छाया,
ऐसा जिसने जी भर-भरकर
यवनों को भी ललचाया।

शहंशाह अकबर ने भेजे
अपने अगणित सेनानी :
दलपतिसिंह से लड़े-भिड़े, पर
चल न सकी कुछ मनमानी।

पारिजात - पुष्पों - सी रानी
शोभित थी ज्यों सुरबाला,
राजमहल में रानी आई
रूप - राशि ले मधुबाला।

दलपतिसिंह के हृदय-कक्ष में
जगमग - जगमग उजियाला
हुआ प्रकाशित राजमहल भी
लेकर दीपों की ज्वाला।

धन - वैभव के मादक सर में
यौवन-शशि की नव - काया
थी प्रतिबिंबित, राग अनोखा
राजा - रानी ने गाया।

अंग - अंग था पुलकित उनका
जीवन भी तो मदमाता।
यौवन का था सुखद सबेरा
संध्या से फिर क्या नाता ?

जीवन के सब सुखमय सपने
सत्य उतरते थे प्रतिवार।
आता था मधुमास वहाँ जब,
सुन पड़ती थी यह झंकार—

"आया है मधुमास यहाँ तो
भरकर रोली का नव थाल;
मातृभक्ति के दीवानों का
करने हंस-हँस भास्वर भाल।

पल्लव-वसना ललित लताएँ
आईं सज - सज अंशुक - माल।
चलो चलें, हम पहन इसी को
काटें शत्रुजनों का जाल।

नभ के नंदन-वन से उतरा
आज मंडला में मधुमास।
फिर क्यों सोते रहें ? किया बस,
यवनों ने काफी उपहास।

मधु-सरणी शैवलिनी रेवा
पादप-छाया में अम्लान
वरण-गान मधुमाती गाती,
निष्प्राणों में भरती प्राण।

अग-जग वांछित आजादी का
यौवन मस्ती का ले भार,
उत्फुल्लित हो झूम रहा है
ले-ले अपना अभिनव प्यार।

पत्र-हीन विटपों पर मनहर
विहग-वर्ग का कलरव गान,
आजादी का शंख फूँकता
मस्ती का देता वरदान।

सुरभित सुमनों की शय्या पर
बिखर पड़ा मृदु पीत पराग।
मञ्जुल-बैनी कोकिल ने भी
छेड़ दिया मतवाला राग।"

शीतल, सुरभित, मन्द पवन यों
वीरों का श्रम थी हरती।
वीर-गान की सुखद लहर ही
उनको उत्साहित करती।

नीले-पीले, हरे-भरे थे
खेत चतुर्दिक लहराते।
तब अकाल या घोर वृष्टि से
कृषक नहीं थे दुख पाते।

जन-जन में था प्रेम परस्पर,
सुख-ही-सुख था लहराता।
राम-राज्य था कभी अकारण
कष्ट न कोई था पाता।

बातें बीतीं, रातें बीतीं,
हुआ एक दिन स्वर्ण-विहान।
प्राप्त हुआ दुर्गा को मञ्जुल
नारी-जीवन का वरदान।

मँडले के घर-घर में उमड़ा
खुशियों का अब पारावार।
राजमहल गुलजार हुआ था,
पाकर 'वल्लभ' राजकुमार।

लाड़-लड़ैते अपने बच्चे
वल्लभ पर दुर्गा रानी
न्योछावर थी, मन में मीठी
गाती थी निम्न कहानी—

"जीवन-सर के सुमन सलोने,
मृदुल कल्पना के उद्गार।
तिमिर-पूर्ण-सी जीवन-निशि के
जगमग-जगमग अयि शृंगार!

कोकिल की उन्मत्त कूक तुम,
तंत्री की मनमोहक तान।
मधुबाला की उन्मन गुञ्जन,
द्रवित हृदय के गीले गान।

दुख की श्याम मेघ-माला के
आशा-विद्युत तुम साकार।
रेवा-बाला की तुम फेनिल
लहरों के मचले उद्गार।

तितली के तुम पंख मनोहर,
पुष्पों के सुरभित उच्छ्वास।
ऊषा की तुम स्वर्णिम लाली,
शरच्चंद्रिका के मृदु हास!

विरही के तुम प्रणय-सरोवर,
प्रथम मिलन की मृदु मुसकान।
मुग्ध हृदय के निर्मल निर्झर,
प्रेमी के नीरव आह्वान।

कवि की कविता-लड़ियों के तुम
उन्मादक सौन्दर्य अनूप।
हृदय-उदधि के रत्न मनोहर,
नवल नीलिमा के अनुरूप।

अय ! अतीत की सुस्मृति पावन,
हरि के तुम सुन्दर अवतार।
तेरी आज बलैयाँ लेती,
न्योछावर तुम पर सौ बार।"

सुरभित पुष्पों से ज्यों पुष्पित
उपवन रहता है गुलजार।
रानी के भी आँचल में था
वल्लभ शिशु सुन्दर सुकुमार।

यह इकलौता बेटा सबकी
आँखों का था ध्रुव तारा।
सुरभित था इसकी श्वासों से
राजमहल प्रतिपल सारा।

दुर्गा ने सीखा था अब तक
सजना वीर वेष प्रतिवार।
दुर्ग तोड़ना, वाण चलाना
और शत्रु पर करना वार।

किन्तु पुत्र को पाकर भी वह
भूल न सकी अपना गुरुभार।
प्रजा-पुत्र दोनों की चिन्ता
रानी करती थी प्रतिवार!

भाले-बाण चलाती अब भी
प्रजा-हितों का रखती ध्यान,
और मन्त्रणा राज-कार्य में
देती रहती वह धीमान्।

चाँदी की रातें हंसती थीं
जगती पर जब अभिमानी।
प्रजा-हितों पर सुख से चिन्ता
करती थी तब यह रानी।

कंचन बरसा गढ़मँडले में
हर्ष-सिन्धु था लहराता।
प्रजा-पुत्र में किंचित् भी तो
भेद न कोई लख पाता।

अभिलाषा, आशा, सुख, वैभव,
सभी वहाँ थे बसते।
जीवन की श्वासें जाती थीं
प्रतिदिन हंसते हँसते।

जीवन की लोल लहरियाँ
बहतीं अविरल मतवाली।
सदा सुनहरी मोहक सुन्दर
आशा की ले उजियाली।

बाल भानु की स्वर्ण रश्मियाँ
गगन-सौध से उतर सहास
परिरम्भण करती थीं प्रतिदिन
पाण्डु-पँखुरियों का सोल्लास।

मधुर मनोहर मृदुल पँखुरियाँ
उच्छ्वासों के नीरव गीत
गातीं और किलकतीं प्रमुदित
आँखमिचौनी खेल पुनीत।

राजमहल था सुखी, प्रजा भी
सुख की नींदों में सोती।
सुख-सरिता की मंजुल धारा
सबके चरणों को धोती।

यह दुनिया ही तो है ऐसी,
सुख पर सुख ही है आता।
अथवा फिर दुःखों का बादल,
जीवन-नभ पर छा जाता।

बेसुध बहता रहता मानव
सुख की लहरों पर अनजान,
किन्तु ज्वार में लय होता, तब
जग का उसको होता ज्ञान।

सुख-दुख, आशा और निराशा
करते रहते खेल महान्,
मिलते मिट्टी में कितने ही
करते जो भी हम अनुमान।

शिशिर-उषा में दूर्वा-दल पर
तुहिन-बिन्दु जब अति सुकुमार
हँस-हँस देखा करते अपनी
सुस्थिरता का स्वप्न अपार;

बाल-उषा जब फैला देती
प्राची में लाली प्रतिवार
शत-शत सुमनों-सी शय्या पर
अमित अलौकिक वैभव-भार;

प्रात-समीरण तब आ कहता—
'क्षण-भंगुर है यह संसार,'
और बाल-रवि भी हँस कहता—
'सदा न सुखमय यह संसार।'

सूर्य-रश्मि के चुंबन से जब
शतदल-पल्लव अति सोल्लास
गद्‌गद होते, करने लगते
मलय-अनिल का अमित विलास,

ले निज अंचल पर जब सरिता
दिनकर का प्रतिबिम्ब ललाम
कल-कल स्वर से गायन गाती,
बहती रहती है अविराम;

नभ का म्लान इंदु तब कहता—
'दुख का सूचक हास-विलास,'
और कुमुदिनी यह कह सोती—
'अस्थिरता जग का इतिहास।'

रंग-बिरंगे सुमनों पर जब
प्रकृति-पद्मिनी सज शृंगार,
बिहँस-बिहँसकर बिखरा देती
मादकता का मधु भांडार;

वारिद-बूंदें रिमझिम-रिमझिम
गिरने से ज्यों ही दो-चार,
मत्त मयूर थिरकने लगता,
दिखता प्रमुदित अपरम्पार;

गूँज-गूँज अलि-दल भी कहता—
'सुखकर है सारा संसार,'
तभी पपीहा यों चिल्लाता—
'मायामय झूठा संसार।'

नव सुमनों-सा रङ्ग-बिरंगा
इंद्र-धनुष का पहने हार,
काले-काले घन जब हँसते
नभ की शय्या पर सुकुमार;

रिमझिम-रिमझिम बूंदाबाँदी,
फुलझड़ियों-सा मंद फुहार
जगती में नव जीवन भरती
पूरी कर जग की मनुहार;

प्रखर सूर्य तब तप्त किरण से
झुलसा जाता यह संसार;
कह जाता—'यों कभी न फूलो,
नश्वर है सारा संसार।'

संध्या होते ही जब रजनी
अपने काले पख पसार
ढक लेती इस विश्व-नीड़ को,
हँसती अपना लख अधिकार;

ले निज अंचल में मधु रजनी
झिलमिल मोती अति अम्लान,
नवल नवेली बन मुसकाती,
तन पर पहन रजत परिधान,

नीरवता तब इङ्गित करती—
'कितना पागल यह संसार,
फूला नहीं समाता अपने
अस्थिर वैभव पर प्रतिवार।'

झिलमिल तारे कर अठखेली,
रजत-चन्द्र से कर जब प्यार,
स्वर्ग-सदन में करते रहते
झिलमिल झिलमिल गगन-विहार;

चन्द्र-चन्द्रिका रजनी में जब
नील कुमुदिनी नयन पसार,
नवल-नवल रँगरलियाँ करती,
हँसती रहती बारम्बार,

अगम निराशा-लहरों का तब
लखकर सम्मुख पारावार,
त्रस्त चकोरी यह कह जाती—
'छलिया है रे! यह संसार!'

दुनिया की इस अजब हाट में
जीवन का होता व्यापार।
राग-रंग में सभी समझते
लाभान्वित हम हुए अपार।

पर जीवन की संध्या में जब
होने लगता है निर्वाण।
माया - ममता राग-रङ्ग का
मिट जाता सारा अज्ञान।

सोने का संसार हमारा
हमसे हो लुट जाता।
सुख का होना ही तो दुख का
सूचक है कहलाता।

रानी के भी जीवन-नभ के
झिलमिल - झिलमिल - से तारे
हुए अस्त, हा ! दलपतिसिंह अब
इस जग से स्वर्ग सिधारे।

योद्धा-पत्नी रानी दुर्गा
हुई हाय ! अब असहाया।
स्वामी खोया, सब कुछ खोया,
दुख का बादल आ छाया !

राजमहल, जो देख चुका था
राजा का नव मोद सहास,
आज वक्ष पर उसका शव ले
खड़ा हुआ था मौन उदास।

जागी थी जिस राजमहल में
रानी दुर्गा की तकदीर,
आज वही सब भूल रहा था
करुण कणों की बन तसवीर।

जीवन के सुख आज बने थे,
सपनों की एक कहानी।
जिन नयनों में थे अंगारे,
आज वहा उनसे पानी।

टूट चुका क्षण-भर को जैसे
दुर्गा का साहस सारा।
रो-रो पड़ता था अंतस्तल
खोकर अपना पति प्यारा!

करती थी मन-ही-मन रानी
आहत-सी कुछ मूक विलाप।
कौन समझ सकता था उसके
अन्तर का गहरा सन्ताप?

बिलख-बिलख उठते थे उसके
कम्पित, शंकित, आहत प्राण—
"हुआ हाय ! जब मेरे पति का
आज अचानक ही अवसान।

कैसे तब मैं छलिया जग में
रह सकती हूँ अब म्रियमाण !
नहीं रही जब काया जग म
छाया कैसी तब यह म्लान ?

रेवा की लहरें अब गातीं
महानाश का भीषण गान।
मुक्ता - सी उस बालु-राशि पर
रचतीं यम का अटल विधान।

झूम-झूम इठलाती आती
अंचल फैला, ले उन्माद
कहती हैं—अब चल तू दुर्गा
धो ले अपना सब अवसाद।

हाँ, रेवे ! तू ढक ले मुझको
अपने अंचल में सोल्लास।
सुना मुझे तू प्रलय-तराने,
बनने दे मेरा इतिहास।

नीलाम्बर के वातायन से
इन्दु-करों की झाँकी श्वेत
झाँक रही है लहर-सेज को
एवं चाँदी-सी वह रेत।

जी भर झाँको किन्तु व्यर्थ है
इन्दु! तुम्हारा सभी प्रयास।
रेवा की इस लहर-सेज पर
सोऊंगी मैं अब सोल्लास।

मेरा हास-विलास सभी कुछ
आज विधाता ने छीना।
आता मुझको आज रुलाने
यह मारुत भीना-भीना।

अखिल विश्व-वारिधि में प्रियतम
अपना यह जीवन-जल-यान,
तारों की मृदु झलमल-सा ही
करता था नित खेल महान्।

दिनकर की ज्यों श्वेत किरण में
सप्त रंग मिलकर छविमान
एकरूप दिखलाई देते,
मानो स्वच्छ रजत-परिधान।

प्रियतम ! अपने जीवन का भी
था कुछ यों ही प्रश्न ललाम।
एक रूप था यद्यपि अपना,
फिर भी भिन्न-भिन्न दो नाम।

किन्तु आज तो यही पहेली
बेध रही है मेरे प्राण।
हुए हाय ! क्यों जग से अपने
भिन्न-भिन्न प्रियतम ! अब प्राण !

है अर्द्धांगिनि हिन्दू पत्नी
पति की पूजक सदा महान्।
खोकर मूल वस्तु को कैसे
रह सकती फिर छाया म्लान ?

आती हूँ तब पास तुम्हारे
मैं भी इस जग से हे नाथ !
जहाँ रहोगे, वहीं रहेंगे
मेरे प्राण साथ-ही-साथ।"

सती-प्रथा के उस युग में था
सबका ही तो यह विश्वास—
पति के शव-सँग जल जाना है
पत्नी का कर्तव्य सहास।

रानी दुर्गा ने पर सहसा
तीन वर्ष का पुत्र विलोक,
सोचा, इसकी दुर्गति होगी,
सहन करेगा कैसे शोक !

फूलों की शय्या पर मेरा
सोता था यह प्यारा लाल ।
आह ! मरूँगी यदि मैं भी, तब
होगा इसका कैसा हाल !

लाड़ - लड़ैते वल्लभ को भी
देख विलखता-सा बेहाल ।
रानी ने बस, सती-प्रथा को
ठुकराया मन से तत्काल ।

सोचा, मेरे मरने पर तो
शत्रु करेंगे मनमानी ।
निश्चय ही इस दीन प्रजा को
होगी बेहद हैरानी ।

माया - ममता की राहों में
धूप - छाँह - सी बन रानी
खेल रही थी आँखमिचौनी
बहा आँख का अब पानी ।

पितृहीन यह मेरा वल्लभ
मातृहीन भी अब होगा।
रहा सनाथ आज तक जो वह,
हा! अनाथ भी अब होगा।

अपने पति के मैं अभाव की
पूर्ति इसी में देखूँगी;
वल्लभ की मुसकानों में अब
मूर्ति उन्हीं की देखूँगी।

उनके लिए रोयगा अन्तर,
धधकेगी मेरी ज्वाला।
आँखें पर यह देख हँसेंगी
आँखों का ही उजियाला।

इसके सुख के लिए सदा मैं
अपना सब दुख पी लूँगी।
प्रजा-पुत्र को देख सुखी मैं
सारा वैधव्य तरूँगी।

तलवारों से आज सजूँगी,
हुए हाथ हैं जो खाली।
प्रजा-पुत्र के अंकुर की मैं
बन जाऊँगी अब माली।

उनके बिना रहेगा नीरस
मेरा यह जीवन सारा।
किन्तु पलेगा मेरा वल्लभ
उनकी आँखों का तारा!

होती हूँ यदि सती आज तो,
जग कायर मुझे कहेगा।
प्रजा-हितों को भूलूँगी, तो
जग भी मुझको भूलेगा।

तिल-तिलकर मैं भस्म भले ही
अब होती सदा रहूँगी।
किन्तु प्रजा का एवं सुत का
मैं पालन नित्य करूँगी।

नहीं सती वह हुई अन्त में
सद्विवेक से किया विचार।
प्रजा-हितों के नव पौदों पर
पड़ा न घातक विकट तुषार।

अपने पति के पद-चिह्नों पर
चलने का कर अडिग विचार,
रानी ने अब लिया हाथ में
राज-दण्ड का गुरुतर भार।

कर्मनिष्ठ यह रानी दुर्गा
प्रजा-हितों का रखकर ध्यान,
कर्मक्षेत्र में उतर पड़ी अब
आँसू पीकर ले मुसकान।

सागर की लहरों में दिखता
शीतलता का ज्यों आगार।
किन्तु सुलगता उनके नीचे
बड़वानल का भीमोद्गार।

रानी दुर्गा का भी अन्तर
सुलग रहा था आठों याम।
पर ओठों पर दमक रही थी
कर्त्तव्यों की दीप्ति ललाम।

---

# द्वितीय सर्ग

अंतर्ज्वाला में वह जलती
योद्धा - पत्नी क्षत्राणी।
किन्तु सदा मुसकाती रहती
मन की मन में रख रानी।

प्रजा-पुत्र दोनों के सुख में
अपना सुख भी यह रानी
सदा समझती, पुलकित रहती,
रोक आँख का अब पानी।

राजमहल में रहकर भी वह
राग - रङ्ग से कोसों दूर
रहती थी, वह रखती थी नित
ध्यान प्रजा का ही भरपूर।

जब-तब दीनों की कुटिया में
अपनी आँखों उनका हाल
स्वयं देखती, धीरज देती,
धन से, वाणी से तत्काल।

गर्व नहीं था रानी में कुछ,
नहीं राज्य-मद का लवलेश,
प्रजा-पुत्र में भेद न रखती,
प्यारा था उसको निज देश।

दिखता नहीं कहीं भी तब था
भेद-भाव का कुछ भी नाम,
शासक - शासित दोनों ही थे
रहते सुख से एक समान।

नहीं यंत्रणा थी, फिर भी था
एक नियन्त्रण का संचार।
शोषण से थी प्रजा मुक्त सब
पलता था आचार-विचार।

इसीलिए जब अवसर आता,
रानी का पाकर संकेत
प्रजा प्राण तक दे देने को
रहती थी तैयार, सचेत।

प्रजा परम पुलकित थी पाकर
रानी का नव लाड़-दुलार;
स्वर्गिक सुख भी थे न्योछावर,
जन-जन में था प्रेम अपार।

था सम्पन्न राज्य वह सारा
गढ़मँडला था स्वर्ग-समान।
स्वर्णिम मुहरों में देते थे
'खेतों का कर' सभी किसान।

शहंशाह अकबर ने सोचा—
'समय यही है अति अनुकूल।
ऐसा अवसर भी यदि खोया,
होगी सचमुच भारी भूल।

दलपतिसिंह के जीवित रहते
निष्फल थे मेरे सब वार,
किन्तु एक अबला पर अब तो
विजय प्राप्त होगी सौ बार।'

यह सोने की चिड़िया भारत
मुगलों के थी परम अधीन।
कुछ थोड़े-से राज्य बचे थे,
यत्र-तत्र जो थे स्वाधीन।

ये ही राज्य खटकते रहते
अकबर के मन में दिन-रैन।
राज्य-वृद्धि की आकांक्षा थी
उसे न लेने देती चैन।

अकबर की यह अभिलाषा थी
होवे मेरा जय-जयकार।
सारे भारत में ही फैले
मुगल-राज्य का चिर अधिकार।

इसीलिए तो उसने अपने
पुरुषों का भी कर प्रतिकार,
नीति बनाई ऐसी, जिसमें
दिये हिंदुओं को अधिकार।

हिंदू-मुस्लिम दोनों से ही
सजता था उसका दरबार,
और हिन्दुओं को भी उसने
बना रखा था मनसबदार।

पोशाकों में कर परिवर्तन,
लगा भाल में तिलक महान्,
पहन गले में कंठी-माला
सजता था निज तन छविमान।

वे रजपूत, जिन्होंने अपने
देश, प्रजा के लिए महान्
सदा कष्ट सहकर प्राणों का
रक्त बहाया, खोए प्राण,

आजादी के लिए जिन्होंने
सदा शत्रुओं से रण ठान,
तलवारों का दिखला कौशल
भारत का रक्खा था मान।

जिनका एक क्षुद्र कंपन भी
होता था भूकंप-समान।
दिग्गज, भूधर हिल उठते थे,
शत्रु भागता ले निज प्राण।

इन पर भी तो जाने कैसा
फेरा था जादू का हाथ,
जिसके वशीभूत हो अब कुछ
देते थे अकबर का साथ।

जो क्षत्राणी बहिनें अपने
पतियों की होते ही हार।
जौहराग्नि में आहुति देकर
पूरी करती थीं मनुहार।

पति के मस्तक पर कुंकम का
लगा लाल टीका छविमान,
यवन-शत्रु से रण करने को
सजती थीं उनको अम्लान।

जिनकी रग-रग में बहता था
क्षत्रियत्व का रक्त महान्,
युद्ध-भूमि भी पावन होती
जब-तब उनका ले बलिदान।

इन ललनाओं में से कुछ पर
बिछा प्रलोभन का कटु जाल।
रजपूतों को दे पद ऊँचे,
धन से करके मालामाल।

अकबर ने हा! बना लिया था,
कुछ को अपनी पटरानी।
और राज्य-लिप्सा की उसकी
चलती रहती मनमानी।

यही नीति है बनी आज तक
मुगल राज्य की कलुष निशानी।
अक्षय है इस जग में जब तक
दुर्गा की अमिट कहानी।

किन्तु दूसरा पहलू इसका
है उजला ज्यों स्वर्ण विहान।
हिन्दू-मुस्लिम एक रहें सब
अकबर का था ध्येय महान्।

कंठी-माला आदि पहनना
सजकर हिन्दू-जैसा वेश—
अकबर देता रहा सभी को
सदा एकता का सन्देश।

यों वह युग था ऐसा जिसमें
अकबर की यह नीति उदार—
फल न सकी सर्वत्र देश में
हुए हिन्दुओं पर कुछ वार।

अकबर के ही कृपापात्र-से
थे कुछ ऐसे मनसबदार,
कर देते थे छुटपुट हमले
करने मुगल-राज्य-विस्तार।

थी न सुरक्षित महिलाओं की
इज्जत इससे भले प्रकार।
घर से बाहर निकल न सकतीं
सजकर सुन्दर वे शृङ्गार।

मातृजाति पर पर्दे का यह
पड़ा तभी से ही अभिशाप।
धुल न सका अब तक भी जिसका
आह ! हमारे सिर से पाप।

और न-जाने आगे कब तक
बना रहेगा यह अभिशाप।
करते हैं हम, और करेंगे
जाने कब तक पश्चात्ताप।

हुई देश की क्षति है इससे
कितनी अब तक विकट महान्,
होगी अभी और भी कितनी,
करें आज क्या हम अनुमान ?

स्वयं नहीं था अकबर इसका
तनिक समर्थक परम उदार,
हिन्दू देवालयों आदि पर
करें वार उसके सरदार।

किन्तु साथ ही इसके उसको
सहन नहीं था यह प्रतिकार—
गढ़मँडलो की रानी उसका
करे न आधिपत्य स्वीकार।

भारत-भर में होता था जब
अकबर का ही जय-जयकार।
देख नहीं सकता था तब वह
किसी राज्य का निज अधिकार।

गढ़मँडले की रानी को भी
अतः जीतने का प्रण ठान,
चलना चाहीं उसने अपनी
कूटनीति की चालें म्लान।

अपमानित करने का उसको
अकबर ने अब किया विचार।
उसने एक कराया सुन्दर
सोने का चर्खा तैयार।

भेज दिया रानी को चर्खा
लिखकर छोटा-सा संवाद—
"जीवन-मरण अमिट है जग में,
छोड़ें सारा शोक-विषाद।

भेज रहा हूँ आज अनोखा
अपना छोटा-सा उपहार;
आशा है, मँडले की रानी,
समुद करेंगी यह स्वीकार।

"विधवा हैं अब आप इसी से
चला - चला चर्खा प्रतिवार
शांति - पूर्ण जीवन की घड़ियाँ
करें व्यतीत भूल संसार।

महिलाएँ क्या वहन करेंगी
राज्य-काज का गुरुतर भार ?
होता है जिनके जीवन में
सदा प्रेम का ही व्यापार।"

रोम-रोम से रानी के अब
बरस पड़े मानो अङ्गार।
प्रत्युत्तर में भेजा पींजन
लिखकर एक विकट ललकार—

"भूल न जाओ, मैं क्षत्राणी,
योद्धा - पत्नी हूँ अम्लान,
धर्म - कर्म पर हँसते हँसते
हो सकती है जो बलिदान।

चला-चलाकर चर्खा यदि मैं
प्रजा-हितों का तज दूँ ध्यान ?
कौन करेगा दीन प्रजा का
पालन-पोषण या कल्याण ?

"और, सूत यदि कातूं मैं, तो
तजकर तुम भी निज व्यापार,
बाबा बनकर, वन में जाकर
धुनको रुई बैठ प्रतिवार।"

शहंशाह अकबर भी कैसे
सह सकता था यह अपमान?
घृत - आहुति आ पड़ी अग्नि में
हृदय - कुण्ड धधका अम्लान।

इसी बीच आसफखाँ नामक
उज्जयिनी का मनसबदार
गूढ़ मंत्रणा करने आया
शहंशाह अकबर के द्वार।

यह आसफखाँ दलपतिसिंह से
खाकर सदा हार - पर - हार,
त्रस्त, थकित हो इच्छुक था फिर
मँडले पर करने को वार।

और, इधर अपमानित होकर
लिये हृदय में अंतर्दाह,
अकबर रहता इसी खोज में
मँडले का हो कैसे दाह।

स्वर्ण-संधि थी, अतः आज यह
किया शाह ने प्रकट विचार—
"आसफ ! जाओ, मँडले पर तुम
कर दो बाणों की बौछार।

नष्ट-भ्रष्ट कर डालो जाकर
रानी का सुखमय संसार।
मौला के प्यारे बन जाओ
मुगल-राज्य का कर विस्तार।

"शहंशाह की शान भूलकर
उसने जो मेरा अपमान
आह ! किया है, उसका सारा
कर दो चूर तुरत अभिमान।

'मँडले के वे गोंड़-भील सब
अर्द्धनग्न, भोले अनजान;
मुगल-सैन्य से लड़ न सकेंगे,
भागेंगे लेकर निज प्राण।

जितनी चाहो, शाही सेना
ले लो, कर दो कूच सकाल।
रानी को कर कैद यहाँ तुम
लाओ, कर दो मुझे निहाल।"

थी सशंक रानी भी प्रतिपल,
होगा यवन शत्रु का वार।
रण-चण्डी चेतेगी, निश्चय
होगा धन-जन का संहार।

हुई पूर्ण यह शंका भी अब
अगणित सैनिक अश्व-सवार
लेकर दल-बल लश्कर आसफ
आया करने नर-संहार।

आसफखाँ का देख आक्रमण
और क्रूरता का व्यापार:
गढ़मँडले की दीन प्रजा पर
तोपों - तलवारों के वार।

नहीं उचित समझा रानी ने
हो प्रलयंकर यों व्यापार।
युद्ध ठानकर करे व्यर्थ क्यों
धन-जन का वह यों संहार।

राज्य-वृद्धि या अन्य स्वार्थ-वश
दो राजाओं में संग्राम
छिड़ता है, पर दीन प्रजा पर
होता है दुःखद परिणाम।

कितने ही जन मरते-कटते,
रण-चण्डी भरती हुङ्कार;
उनके आश्रित सभी जनों का
रो पड़ता छोटा संसार।

कितनी बहिनें होतीं विधवा,
मस्तक का पुछता सिन्दूर,
उदर पालना दुष्कर होता,
काल-चक्र भी हँसता क्रूर।

कितने ही कृषकों के सुन्दर
लहराते-से खेत अकाल
नष्ट-भ्रष्ट कर रौंदे जाते
शत्रु-सैन्य द्वारा तत्काल।

रोते रहते और कोसते
शासक को तब दीन किसान।
भूखों मरते हैं बेचारे,
करता कौन भला फिर त्राण?

हो सकता पर कभी नहीं यह
मातृभूमि के लिए प्रधान:
बैठ रहें हम घर में सुख से,
निज कर्मों का तज दें ध्यान।

इन बातों का लेखा ही क्या,
चढ़ें सभी के भी यदि प्राण,
और रहे स्वाधीन देश, तो
सार्थक है सारा बलिदान।

आजादी के लिए लगे यदि
तन का कतरा-कतरा आज,
हँसते-हँसते यज्ञ-कुण्ड में
आहुति दूँगी सजकर साज।

किए खूब इन मुगलों ने इस
भारत-भू पर अत्याचार।
आज करूँगी डटकर इनका,
इनकी सेना का प्रतिकार।

चल पड़ा जब काफिला ही,
रैन क्या, फिर भोर कैसा ?
आदि कैसा, अंत कैसा,
वेदना का शोर कैसा ?

शस्त्र का हो भय हमें क्या,
तोप का विस्फोट सहना
है हमें तो फूल-सा तब
शर्म छिपकर ओट रहना।

मेघ उड़ते आ रहे हैं
वक्ष पर अभिशाप लादे;
गिर पड़ेंगे नाश करने,
पूर्ण करने निज इरादे ।

बन रहा अपना पराया,
शांति का फिर छोर कैसा ?
चल पड़ा जब काफिला ही,
रैन क्या, फिर भोर कैसा ?

आज असमय ही धरा पर
कंप का यह ज्वार आया।
विश्व सारा काँपता है,
लो, हमारा नाश आया।

दर्प का अब शत्रुओं में
नरक से शैतान आया।
निर्बलों को भूंजने का
क्षार का सामान लाया ।

कूद पड़ना जब चिता में,
तोप का रव घोर कैसा ?
चल पड़ा जब काफिला ही,
रैन क्या, फिर भोर कैसा ?

विंध्य को ही ले उड़ें हम,
शत्रु का अवसान आए।
वक्ष उनका छेद दें बस,
अब धधक अरमान आए।

गिर पड़ें आकाश से भी
ये चमकते-से सितारे।
अग्नि के शोले बनें ये
वार करने पर हमारे।

चल हमारे साथ तू भी
नर्मदे ! मधु शोर कैसा ?
चल पड़ा जब काफिला ही,
रैन क्या, फिर भोर कैसा ?

बाहु की तड़पन मिटेगी,
यह भला आभास पाया।
आज यौवन में धधकता
क्रांति का उल्लास आया।

राहु-सा ही ग्रह कटेगा
और यह तम-तोम काला।
पौ फटेगी पूर्व से ही
हँस पड़ेगी व्योम-बाला।

मिल रहा अमरत्व हमको,
फिर मरण का शोर कैसा ?
चल पड़ा जब काफिला ही,
रैन क्या, फिर भोर कैसा ?

आज रोकना होगा इनका
यह अप्रिय सारा व्यापार।
दर्प-दमन करना ही होगा
सैन्य-साज सज भले प्रकार।

अनाहूत आसफ को फिर भी
समझाकर उसने फिलहाल;
रखना चाहा सुखी प्रजा को
आई आफत असमय टाल।

पर आसफ ने रानी के इस
रुख पर जब कुछ दिया न ध्यान,
एक पत्र दुर्गा ने भेजा
होकर मन में तब कुछ म्लान—

"शूरवीर हैं आप, और फिर
उज्जयिनी के मनसबदार!
किंतु एक विधवा से लड़ने
को हैं आप अहो! तैयार।

"निश्चित है, इस अल्प राज्य को
आप अकारण कर बरबाद,
पा न सकेंगे यश, दुनिया भी
देगी नहीं आपको दाद।

प्रत्युत दुनिया यही कहेगी,
निर्बल विधवा पर यह वार,
आसफ खाँ की कायरता है,
इससे लाख बार धिक्कार!

"कर सकता है कौन भला फिर
भावी का लेखा अनजान।
हुए सत्य क्या कभी हमारे
स्वप्निल जग के भी अनुमान?

"आए हैं जो आप सुनहली
अपनी जय का कर अनुमान;
किन्तु पराजित होने का भी
किया स्वप्न में है कुछ ध्यान?

कहती हूँ मैं सत्य-सत्य सब
नहीं समझना यह अभिमान।
ज्ञात नहीं क्या लेश आपको
हिन्दू रमणी की कुछ आन!

"जिस योद्धा से हुए पराजित
अगणित यवन अनेकों बार।
उस योद्धा की पत्नी भी यह
खा न सकेगी तुमसे हार।

बिना युद्ध के दे न सकूँगी
तिल-भर भी अवनी का भाग।
बरसा दूँगी युद्ध-भूमि में
अपनी बज्र शक्ति की आग।

"बतला दूँगी अन्यायों का
कैसा होता है प्रतिकार।
देश-जाति, निज मर्यादा का
करती हूँ कैसे उद्धार।

'स्वतः प्रतिष्ठा, कुल-रक्षा का
रखने सदा अमर सम्मान,
बतला दूँगी, करतीं कैसे
हिन्दू ललनाएँ बलिदान।

हुए विजेता भी यदि लड़कर
जीत सके जो मुझको आप।
हर्ष नहीं लज्जा वह होगी,
धुल न सकेगा जिसका पाप।

"और पराजित हुए कहीं तब
संचित गौरव से भी हाथ
धोओगे, यह निश्चित समझो,
छोड़ेंगे अकबर भी साथ।

इतने पर भी कर न सको यदि
परिवर्त्तित तुम युद्ध-विचार,
तो मैं मोर्चा लेने को भी
हूँ सहर्ष प्रतिपल तैयार।"

पर बर्तन में पानी का ज्यों
तदनुरूप होता आकार,
आसफ भी अकबर की शह पर
तज न सका किंचित् कुविचार।

आसफ ने इस सन्देशे पर
किंचित् भी तो दिया न ध्यान।
कहला भेजा—"समझो इसमें
ही अपना कल्याण महान्।

आधिपत्य बस मेरा स्वीकृत
कर लो या तो तुम चुपचाप,
देखोगी फिर विकट अन्यथा
मेरा भीषण-सा अभिशाप।

"गढ़मँडले का किला तुम्हारा
करवा दूँगा चकनाचूर।
तोप-बमों की अग्नि-शिखा में
देखोगी यम की तस्वीर।

हो तुम विधवा इसीलिए मैं
करता हूँ कुछ समय प्रदान,
तीन दिवस में सोच-समझकर
उत्तर दो या लड़ो निदान्।"

आसफ का यह उत्तर पाकर
रानी ने ले ली तलवार।
बरस पड़े उसकी आँखों से
लाल-लाल जलते अङ्गार।

था स्वरूप जितना ही कोमल
उतना ही अब हुआ प्रचण्ड।
दुर्गा 'दुर्गा' बनकर प्रकटी
यवन-निशा पर बन मार्त्तण्ड।

क्षण-भर में दिख पड़ा भयानक
युद्ध-भूमि में अपरम्पार
दो सेनाओं के वीरों का
शस्त्र-सुसज्जित पारावार।

युद्ध-दुन्दुभी, मारू बाजे
बजने लगे वहाँ गतिवान ।
छिड़ा युद्ध दो सेनाओं में
रानी गर्जी सिंह समान ।

रेवा-तट की विन्ध्य तटी में
गढ़-मँडले· की रानी
तड़प उठी लो, आज देखने
किसमें कितना पानी ?

गूँज उठी लो, महाप्रलय की
आज गगन में बोली—
महाप्रलय की आग बरसती,
धरा काँपती डोली ।

आज विकट रणचण्डी जागी,
युग-युग से थी सोती ।
पिरो रही अपनी माला में
नर-मुण्डों के मोती ।

मर मिटने की इस मञ्जिल पर
आज लगा फिर मेला ।
सूना आलम जाग पड़ा फिर
जगी मरण की वेला ।

रण-दीवानों के मस्तक पर
दमक उठी फिर रोली ।
महाप्रलय की आग बरसती,
धरा काँपती डोली ।

सुलग पड़ा वीरों का यौवन
बही रुधिर की धारा ।
उमड़ पड़ा यह महानाश तब
कौन किसे हो प्यारा ?

नर को नर ही भूँज रहा ले
बम-विस्फोट सहारा ।
कौन किसे पहचाने ? छाया
आज कुहू अँधियारा ।

देखो सन्नाटे में जलती
मरघट - जैसी होली ।
महाप्रलय की आग बरसती,
धरा काँपती डोली ।

मानव का चीत्कार सुने अब
आँसू कौन बहावे ?
तोपों की घर-घर में कैसे
मानव-स्वर उठ पावे ?

बम-विस्फोट अनवरत होता,
महा प्रलय हहराता।
महानाश की लपटों में अब
मानव जलता जाता।

माया-ममतामय फिर उसकी
जलती अन्तिम बोली।
महाप्रलय की आग बरसती,
धरा काँपती डोली।

रण कौशल, सेना-संचालन
था दुर्गा का विकट महान्।
टिक न सकी आसफ की सेना
भागी लेकर अपने प्राण।

पैर उखड़ने लगे शत्रु के
देख सैन्य का यह अवसान।
आसफ हारा, मिट्टी में ही
मिला आज उसका अभिमान।

स्वप्निल जग में आसफ के थे
जगमग-जगमग जो अरमान,
दुर्गा से हो आज पराजित
हुए वही थे सारे म्लान।

यों अभिमानी आसफ अपना
मिट्टी में मिलवा अभिमान,
लौट गया उज्जैन हारकर
लज्जित, व्यथित हुआ म्रियमाण।

यहाँ प्रफुल्लित हो रानी ने
किया नगर में अब प्रस्थान।
गूँज उठा मँडले के नभ में
विजय-दुन्दुभी का कल गान।

मुगलों की यह हार देखकर
जन-जन में था हर्ष अपार।
गढ़मँडले की रानी भी थी
हर्षित, प्रमुदित अपरम्पार।

अपने लाल-लाल अंचल से
सांध्य गगन ने भी सोल्लास
रानी के इस विजय-हर्ष पर
बिखराया निज हास-विलास।

रेवा-बाला ने भी अपनी
लहराती लहरों के गान
गा-गाकर मृदु कल-कल स्वर से
रानी का रक्खा सम्मान।

रजनी आई भर अंचल में
झिलमिल-झिलमिल छवि अम्लान,
हार बना तारों का प्रस्तुत
रानी का करने सम्मान।

तारों ने भी जगकर सजकर,
अपना सुन्दर नीलम-लोक
जगमग-जगमग रखा रात-भर
रानी की यह विजय विलोक।

गढ़मँडले के इन शूलों का
फूलों-सा कर सुखद स्वरूप,
विजय प्राप्त की थी रानी ने
अपने साहस के अनुरूप।

प्रजाजनों ने प्राप्त किया था
अब तक उसका लाड़-दुलार।
पहचाना पर आज शक्तिमय
दुर्गा का यह शौर्य अपार।

सजे मण्डला के घर-घर में
ध्वजा - पताका, बन्दनवार;
आज प्रजा थी सुख से फूली
रानी का कर जय-जयकार।

उधर पराजित आसफ जाकर
बैठ न सका अधिक चुपचाप।
संचित की निज सैन्य शक्ति फिर
रहा हृदय में अति सन्ताप।

बारह बार किए मँडले पर
बार-बार उसने फिर वार;
किंतु विजय मिल सकी न उसको,
हुआ पराजित बारम्बार।

हो हताश तब गया अन्त में
शहंशाह अकबर के पास।
दुर्गा के साहस का सारा
प्रकट किया अविकल इतिहास।

शहंशाह अकबर को कैसे
होती सहन भला यह बात!
मुगल - राज्य हो भारत - भर में,
चाह जिसे थी यह दिन - रात।

आसफ को मुँहमाँगी सेना,
छः सहस्र दे अश्व - सवार;
द्विगुणित पैदल - दल देकर फिर
दिया धैर्य भी उसे अपार।

शहंशाह अकबर ने देखा
आसफ हारा बारम्बार।
समझा, रानी दुर्गा अब तो
मानो रही मुझे ललकार।

धूमायित यों घुटते रहना
नहीं उचित होगा अब और
धूल-धूसरित करना होगा
रानी का उन्नत-सा मौर।

इसीलिए अकबर ने खुलकर
आसफ को उकसाया आज—
"जाओ कर दो तहस-नहस तुम
रानी दुर्गा का सब राज।

"भेजूँगा मैं तोपों का भी
एक रिसाला वहाँ सकाल;
बरसा देगा जो मँडले पर
बम के गोले, जलती ज्वाल।

जीत सकोगे तब तुम आसफ,
अनायास भरकर हुङ्कार।
मिला सकोगे मिट्टी में बस,
रानी का अभिमान अपार।"

आसफ ने यों साज समर के
जोरों से सजकर इस बार
किया आक्रमण गढ़मँडले पर
पूरी करने को मनुहार।

थी नःहताश पर रानी, यद्यपि
पन्द्रह सौ थे अश्व-सवार।
सजी अल्प सेना ही इसने
पैदल-दल ले आठ हजार।

अपने ही भुजबल का रानी
करती थी ज्यादा विश्वास।
शत्रु-दमन को उद्यत थी वह
रहते तन में अन्तिम श्वास।

गढ़मँडले की दीन प्रजा की
रक्षा करने को प्रतिवार
थी सतर्क वह, मन में ठानी
करना मुगलों का प्रतिकार।

---

# तृतीय सर्ग

झिलमिल-झिलमिल चमक रहा था
नील व्योम जब अति अम्लान।
तारे करने को अठखेली
दिखते थे सुन्दर द्युतिमान।

तारों से तब बिदा माँगकर,
छिपकर मेघों की ही ओट
आज इंदु था ग्लान न-जाने,
मर्माहत-सा खा कुछ चोट।

जलचर, थलचर, नभचर भी तो
मस्ती का भूले आलाप,
हो गतिहीन पड़े थे यों ही,
करते थे कुछ मौन विलाप।

झरना अपना झर-झर मोहक,
सरिता भी कल-कल संगीत
गा न रही थी, रोती थी हा!
जाने क्यों हो आज सभीत।

दिखती झिलमिल रातों में जो
नील कुमुदिनी सदा सहास,
ओस-बिन्दु ले निज पलकों पर
अश्रु बहाती आज उदास।

नहीं समझ सकता है नर जिस
आनेवाले कल की मार।
संसृति के कण-कण से बहती
उसी व्यथा की पहले धार।

किया प्रकृति ने यहाँ वही था
भावी का चित्रण तत्काल।
झलक पड़ी थी महानाश की
एक झलक यह आज विशाल।

स्वप्निल जग में विचर रहा था
जग का मानव जब अनजान,
देख रहा था सुन्दर सपने,
छाया था जग में सुनसान।

अम्बर की नीली थाली में
बिखरे थे मोती छबिमान
स्वप्निल जग में थे अचेत से
नश्वर जग के सारे प्राण।

मुगलों ने तब सैन्य-साज सज
मँडले को घेरा चुपचाप।
खेमे चारों ओर लगाए,
जन-जन में छाया अनुताप।

सोए थे कुछ सैनिक सुख से,
जाग रहे थे कुछ सोल्लास।
आसफ के खेमे में होता
सुखद, अनोखा रास-विलास।

साकी के कर से पी-पीकर
पीने वाले मतवाले
ढाल रहे थे झूम-झूमकर
मादक प्याले पर प्याले।

नृत्य-गान की स्वर-लहरी से
गूँज पड़ा वह खेमा आज।
समर-भूमि में भी आसफ ने
सुख के सजे अनेकों साज।

सदा सुखों में रहनेवाले,
हँसनेवाले ये श्रीमान्,
दीन - हीन, असहायों का भी
करने चले भला क्यों ध्यान ?

इन खेमों से दूर वनों में
झोपड़ियों में रहनेवाले
दीन कृषक क्या समझ सकेंगे
सामन्तों के रङ्ग निराले !

उन्हें पता क्या उनके श्रम से
निर्मित होती यह मधुशाला।
खून चूसते ये जनता का,
अँगुली कौन उठानेवाला ?

सामन्तों की रङ्गीनी में
भोग - विलास सदा इतराता।
आत्मशक्ति या मानवता का
नाम न इनमें कुछ रह जाता।

घोर नीचता और कुटिलता
सामन्तों की अपनी थाती।
पैसों से देवत्व प्राप्त कर,
फूली रहती इनकी छाती।

वह देवत्व कि जिसमें रहती,
सदा आसुरी ही अभिलाषा।
कुचली जाती निर्ममता से
जहाँ सुनहरी सबकी आशा।

भालों की नोकों पर करते
यवन लगानों की भरपाई,
जिसके बल पर बजती रहती
इनके खेमों में शहनाई।

इनके राग-रङ्ग का चलता
फव्वारा जग में प्रतिवार;
जिसमें छींटे प्रजा-रक्त के
बहते पानी की बन धार।

अपने सुख के लिए बहाते
धन की सरिता ये धनवान।
काश, गरीबों को यह देकर
करते उनका कुछ कल्याण।

सदा जगत् में जीवित रहता
इनका वैभव एवं नाम।
दीनों की कुटिया में होती
इनकी पूजा आठों याम।

किन्तु इन्हें तो एक स्वार्थ ही
जग में है बस इष्ट महान् :
दीनों पर ही दिखलाते ये
अपनी शान और अभिमान ।

गढ़-मँडले की दीन प्रजा का
था अब यों ही दुखकर हाल :
बालक, वनिता, वृद्ध, युवक, सब
चिन्तित थे एवं बेहाल ।

किन्तु हृदय में कुछ वीरों के
धधके जलते-से अङ्गार ।
अपने आश्रित सभी जनों को
देते थे वे धैर्य अपार—

इस जीवन का मोल-तोल भी
कौन करेगा दीवाने ?
भाग्य जहाँ रोता है निशि-दिन
दुर्दिन का जाला ताने !

हास-हर्ष या राग-रङ्ग को
इस जग में हम क्या जानें,
प्रत्युत इनके नाम-मात्र से
फटते हैं घाव पुराने ।

पत्थर के बिस्तर पर सोते
अम्बर की चादर ताने।
क्षुधा - तृप्ति के लिए न मिलते
हमको सुख से दो दाने !

विषम व्यथा - छाया से नित ही
यह जीवन ढकता जाता।
इन्द्र - धनुष-सा हास्य भला फिर
कैसे ओठों पर आता ?

मानवता का शाप जहाँ है
प्रातः संध्या की बेला
इठलाता वरदान बना जब,
तब क्या निर्जन, क्या मेला ?

चलो चलें, फिर आज बहा दें
परवशता बन उन्मादी।
हँसें, मिलें फिर मस्ती से हम,
मिट जाए सब बर्बादी !

सोते क्यों हम सपनों में ही
भूले अपनापन सारा ?
आज किरण-बेला में जागें,
चढ़ने दें यौवन प्यारा।

गढ़मँडले के आज किले में
छाया था भीषण अनुताप।
युवक, वृद्ध, वनिता सबको ही
था कुछ आज नया सन्ताप।

पर निश्चय ही बालक मुख से
सोए थे बेसुध चुपचाप।
पड़ी उन्हें क्या होता जग में
सुख-दुःख, गाना या कि विलाप!

आगत आशंका के दुख से
कण्टक पथ का कर अनुमान,
चिन्ता में डूबा था सारा
राजमहल दिखता था म्लान।

वहीं किले के एक कक्ष में
चिन्ता का ओढ़े परिधान
दरबारी निज मन्तव्यों का
रचते थे तब नया विधान।

उच्चासन पर रानी दुर्गा
शोभित थी अति ही अम्लान।
सभी सभासद दीख रहे थे
चिंतित, क्लान्त, दुखित, म्रियमाण।

ताक रहे थे रानी का मुख,
ज्यों शिशु माता का अनजान;
पर दुर्गा के ओठों पर थी
नाच रही नव मृदु मुसकान।

प्रस्तुत सभासदों से रानी
बोली ओजस्वी यह बात—
"है अवलंबित हम पर ही निज
मातृभूमि की लज्जा तात!

"आओ वीरो! बढ़े चलें हम,
तोड़ें पथ के ये व्यवधान।
आशा का ही संबल बस है,
गगन हमारा है परिधान!

"हम हैं, तुम हो, देखो सम्मुख
यह विशाल पथ अपना म्लान,
दुर्गम, टेढ़ा-मेढ़ा है पर
करना पूर्ण चढ़ाकर प्रान।

आओ, चलते चलें अनवरत,
अभी दूर है अपना देश।
पहुँचेंगे कब, कैसे, इसकी
करें न हम कुछ चिंता लेश।

"उषा-सुन्दरी का मुसकाना,
अमल कमल का नव मधुहास।
कलियों पर अलियों का आना,
जग का सारा यह उल्लास।

कल्प-वयन के मोह-अयन में,
निशा-शयन-सा यह उन्माद—
बन न सकेगा कभी हमारे
कर्मठ जीवन का संवाद।

"आग धधकती हो अन्तर में,
आँखों में चिनगारी लाल,
रोम-रोम बन रहा जहाँ हो
भक्षक के भक्षण को व्याल।

"वहाँ कहाँ फिर चैन मिलेगी,
अथवा किंचित् भी विश्राम,
प्रत्युत बढ़ते चलने का ही
होगा प्रतिपल मन्त्र ललाम।

पुलकित, प्रमुदित स्वागत सबका
झंझा, वर्षा अथवा गाज।
शूलों को हम चलो बना लें
फूलों-सा ही सुन्दर साज।

"काली-काली घोर घटा फिर
कर न सकेगी उपल-प्रहार।
रिमझिम - रिमझिम बूँदाबाँदी
होगी स्वागत का संभार !

"गौरव-गरिमा, आत्ममान सब
मुगलों के हाथों चुपचाप
जीवित रहते अर्पित करना
होगा वीर-कर्म-अभिशाप।

"बच्चा-बच्चा भी होता हो
आज समर में यदि बलिदान,
हो जाने दो, हम भी होंगे,
किन्तु न बेचें निज अभिमान।

"बच्चों के एवं अपने भी
शोणित से नितप्रति अम्लान
अंकित होकर अमर रहेगा
देश-भक्ति का यह बलिदान।"

यह गर्वीली, जोशीली-सी
सुनकर रानी की हुङ्कार;
साज समर के सजे शीघ्र ही
वीर सैन्य ने भले प्रकार।

उमड़ रहा था तन में उनके
आज जोश का उत्स सहास,
ऐसा जिसको मोह न सकता
नारी का भी मोहक हास।

देश-जाति की लाज बचाने
तत्पर थे देने बलिदान।
झूम-झूम पड़ते थे वे तो
गाते थे तन्मय हो गान।

बहता था नस-नस में उनकी
आज रुधिर द्विगुणित गतिमान।
माया-ममता, राग-रङ्ग का
तोड़ रहे थे वे व्यवधान।

अपनी-अपनी पत्नी से अब
वीर-वेश सजकर छविमान,
माँग रहे थे बिदा आज वे
सुना-सुनाकर सैनिक गान—

"जाते हैं हम समर-भूमि में
शत्रु-दमन की लेकर आन,
क्षार-क्षार करने को उनका
बढ़ा हुआ सारा अभिमान।

"आज हृदय के प्रणय-उत्स में
बाकी रही न रस की धार।
इन्द्र-धनुष के रङ्गों-सा ही
मिटा सभी स्वप्निल अभिसार।

उन्मीलित आँखों में भरकर
सपनों का चंचल उन्माद।
सोए अब तक हम मदमाते
मोह अयन में ले अवसाद।

"क्रीड़ा की वे रँगलियाँ थीं,
खेल रहे थे हम जो फाग।
बचता कैसे स्वत्व हमारा,
छल ही बनता जब अनुराग?

"अलस प्राण पर सो न सकेंगे,
खो न सकेंगे निज अधिकार।
कर देंगे अब अणु-अणु में हम
जीवन-जागृति का संचार।

चंद्र-चंद्रिका की चाँदी-सी
रातों में तन्मय साकार
सुन न सकेंगे प्राण आज यह
प्रेयसि-पायल की झनकार।

"कर्म-क्षेत्र की संगिनि बनकर
आज सुना दो धनु-टंकार।
सज लो अपने कोमल कर भी
आज चमकती ले तलवार।

दूर क्षितिज के पार हमारा
गूँज उठे गुरुता का राग।
अग-जग सजग बनें यह सारा
आँके और हमारा त्याग।

"सीमित-सी इन सीमाओं में
अपनी आहों का आकाश,
आज हमें ही ढककर प्रेयसि!'
करने चला हमारा नाश।

"तब फिर कैसे रहें हमारे
बोलो, उलझे ही ये प्राण?
महाशक्ति के विप्लव का अब
क्यों न करें हम सब आह्वान?"

वीर-पत्नियों ने भी इस पर
समर-भूमि के लिए सहास
पूजन-अर्चन कर पतियों का
भेज दिया उनको सोल्लास।

यहाँ रोष से रानी का था
कंपित गात्र रुचिर, छविमान।
रत्न-मुकुट उसके मस्तक पर
दमक रहा था अति द्युतिमान।

झरता था उसकी आँखों से
अनल-कणों का लाल प्रताप।
तन में दुर्गा के उतरा था
प्रबल रोष का झंझावात।

धनुष-बाण ले बैठी गज पर
वीर वेश सजकर द्युतिमान।
युद्ध क्षेत्र के लिए हर्ष से
किया शीघ्र उसने प्रस्थान।

हुआ सामना आसफखाँ से
समर-भूमि में भले प्रकार।
भाले खटखट और खनाखन
बजने लगी नग्न तलवार।

रानी का भी इकलौता सुत
नहीं रहा था अब नादान।
था दुर्गा की आशाओं का
वह किशोर अब केन्द्र महान्।

इस इकलौते वीर लाल को
रानी ने प्रतिपल, प्रतिवार
सिखलाया था रिपु-ग्रीवा पर
अस्त्र-शस्त्र का करना वार।

बैठ अश्व पर, नित्य सैर कर
वन-पर्वत, सरिता कर पार,
किया बहुत था उसने हिंसक
पशुओं का निर्भीक शिकार।

बाल-सूर्य ने उसे सिखाया
रहना हँसमुख नित अम्लान,
अन्धकार को चीर जगत में
करना सुखकर स्वर्ण विहान।

वीर पिता एवं माता का
अतुल साहसी राजकुमार
देख नहीं सकता था क्षण भर
यवनों का यह अत्याचार।

निज माता की सदा जबानी
सुनी कहानी थी प्रतिवार:
वीर पिता के उस साहस की,
जिसने किया शत्रु-संहार।

और, उसी से हमसे जलकर
करते हैं ये अत्याचार।
हमें हराकर राज्य छीनना
है बस इनका यही विचार।

अन्तर की ले आग धधकती
आया आगे राजकुमार,
काटा मूली - गाजर - सा ही
यवन - सैन्य को बारम्बार।

समर-भूमि में अब शोणित की
सरिता बहने लगी महान्।
शस्त्रों से कट शत्रु अनेकों
होते थे रण में बलिदान।

पर इतने में ही वल्लभ का
अश्व हुआ हा! पंगु निदान;
फलतः वल्लभ गिरा धरा पर,
हुआ शत्रु का - स्वर्ण-विहान।

सब यवनों ने मिलकर घेरा,
एक साथ ही किया प्रहार।
सँभल न पाया जल्दी में हा!
घायल होकर गिरा कुमार।

राहु-केतु के मध्य इन्दु ज्यों
घिर जाता, दिखता निष्प्राण;
यवन-शत्रु ने वल्लभ को भी
घेरा बरसा अगणित बाण।

मातृहृदय रानी का तब तो
सह न सका यह अत्याचार।
सुत पर उसे सुहाती कैसे
बाणों की भीषण बौछार?

प्रलय मचाकर शत्रु-सैन्य को
छिन्न-भिन्न करके तत्काल
भेजा वल्लभ को निज गढ़ में
और सँभाली कटु करवाल।

चमक उठी बिजली-सी क्षण में
समर-भूमि में बज्र-समान
टूट पड़ी यवनों पर दुर्गा
करने लगी शत्रु-अवसान।

विकट क्रोध की लपटों ने अब
महानाश का खेल रचाया।
रोम-रोम ने दुर्गा के अब
रण-चण्डी का रूप दिखाया।

चली विपथगा विप्लव करती
महानाश का बिगुल बजाती।
यवनों का अब रक्त बहाकर
रणचण्डी का साज सजाती।

राजमहल के सपने टूटे,
शाही शान बनी हैरानी।
युद्ध-भूमि में महाप्रलय की
चण्डी कहती आज कहानी।

मानव मानव को ही खाता,
मूक बनी अब उसकी वाणी।
युद्धभूमि की अग्नि-शिखा में
जलती उसकी आज जवानी।

रणचंडी निज खप्पर भरकर
आज नाचती है मुसकाती।
चली विपथगा विप्लव करती
महानाश का बिगुल बजाती।

रूप-राशि का वैभव जलता,
जलती पाप-पुण्य की धारा।
रण-दीवाने चले सजाते
काल-नदी का आज किनारा।

आज नुकीले भालों का स्वर
महानाश का राग सुनाता।
देख धधकती मानवता यों
मृत्युञ्जय भी अब अकुलाता।

जहर उगलती रणचण्डी पर
कहाँ तनिक भी अब सकुचाती ?
चली विपथगा विप्लव करती
महानाश का बिगुल बजाती !

मानवता के अभिशापों से
मानव त्राहि-त्राहि चिल्लाता।
श्वानों के पर आज उदर में
मानव-शोणित चला समाता।

बचपन, यौवन, जर्जरता सब
आज बने मरघट के वासी।
छाया जगती में सन्नाटा,
दिग्दिगन्त में भरी उदासी।

मानव-शोणित-चन्दन से यह
आज विपथगा भाल सजाती।
चली विपथगा विप्लव करती
महानाश का बिगुल बजाती।

माया-ममता की बस्ती में
जलती मस्ती अब अकुलाती।
पाप-पुण्य की स्वर्ग-नरक की
मानव-निधि सब जलती जाती।

अन्धकार की अविदित छाया
बनी दिवस में भी अधिवासी।
जीवन आज मरण से खेला
किन्तु विपथगा अब भी प्यासी।

काँप-काँप कर आज धरा भी
डगमग-डगमग हिल-डुल जाती।
चली विपथगा विप्लव करती,
महानाश का बिगुल बजाती।

युद्ध-युद्ध की गगन-भेदिनी
लगी गूँजने प्रतिपल बोली।
रणचण्डी का खप्पर भरता
मानव की अब जलती होली।

मानव पर अब मानव टूटा,
राज्य-वृद्धि का ताण्डव आया।
मरघट जैसा सन्नाटा यों
रोशन-सी दुनिया में छाया।

तृप्त कहाँ पर चण्डी अब तक
मानव-शोणित पीती जाती !
चली विपथगा विप्लव करती,
महानाश का बिगुल बजाती।

मानव-शोणित-चन्दन करता
नभ का अब अभिषेक निराला।
दूर क्षितिज के पार पहनती
आज उषा मुण्डों की माला।

श्वान-शृगालों की बात नहीं,
मानव दानव बनता जाता।
आज युद्ध के मैदानों में वह
मानव पर ही बम बरसाता।

महानाश के इस ताण्डव से
माया-ममता अब अकुलाती।
चली विपथगा विप्लव करती,
महानाश का बिगुल बजाती।

प्यास बुझेगी कब तक इसकी
कौन समझता इसकी माया ?
मृत्युञ्जय का नेत्र तीसरा
आज खुला यह जग अकुलाया।

तलवारों की नग्न धार पर
मानव की बलि चढ़ती जाती।
रेवा की लहरों पर नर की
सोती दुनिया बसती जाती।

कङ्कालों की पंक्ति क्षितिज पर
घनीभूत अब होती जाती।
नील व्योम की तारक सुषमा
सूनी होकर रोती जाती।

स्वर्गङ्गा भी अश्रु बहाती,
कुहू अँधेरा नभ में छाया।
मृत्युञ्जय का नेत्र तीसरा
आज खुला यह जग अकुलाया।

कल तक जिन पर टिकी हुई थी
जीवन-तरु की कोमल डाली।
दिखती थी अगणित बहिनों के
ओठों पर जो सस्मित लाली।

खोकर अपना वही सहारा,
ओठों पर अब रही न लाली।
रहा नहीं सिन्दूर माँग में
हुए हाथ भी उनके खाली।

कितने ही संसार मिटाकर
यम ने यह उत्पात मचाया।
मृत्युञ्जय का नेत्र तीसरा
आज खुला यह जग अकुलाया।

आज हिला उत्तुङ्ग हिमालय,
गङ्गा-यमुना की भी धारा
कम्पित होने लगी अचानक
मचल उठा सागर भी खारा।

विन्ध्याचल भी हिला आज लो,
रेवा की भी मञ्जुल धारा—
धुआंधार ले मचल उठी अब
उड़ा गगन में जल-फव्वारा।

दुर्गा के इस विकट शौर्य से
अनवधान हो आसफ म्लान,
दूतों द्वारा दुर्गा-दल को
अब फुसलाने लगा निदान्।

दिया प्रलोभन पद का, धन का,
कहा—"व्यर्थ क्यों खोते प्राण।
मुगलों की इस विशद् सैन्य से
कब तक युद्ध सकोगे ठान ?

"लड़कर-कटकर मर जाओगे
असमय में ही, करो विचार।
नष्ट भ्रष्ट कर दिये जायँगे
गिन-गिन मँडले के घर द्वार।

लेकिन अब भी तुम यदि चाहो
बचा सकोगे अपने प्राण।
सुख से जीवन बिता सकोगे,
मुगल तुम्हें दे सकते त्राण।

"रानी के तो सैनिक दल में
कर न सकोगे तुम उत्थान।
साधारण से एक सिपाही
बने रहोगे सह अपमान।

"किन्तु मिलो यदि हममें आकर
शीघ्र बनोगे मनसबदार।
भोग सकोगे तुम सुख सारे
होगा सुखमय तव संसार।"

सच्चे वीरों ने पर उसको
दे दी एक कड़ी फटकार—
"देशभक्ति के सम्मुख है क्या
प्राण-विसर्जन, कारागार!"

होते हैं पर ऐसे भी कुछ
आह ! विभीषण या जयचन्द,
फँस जाते हैं कायरतावश
लालच अथवा पद के फन्द।

स्वजनों एवं मातृभूमि से
देश-भक्ति से कर विद्रोह,
स्वतः कुल्हाड़ी पटक पैर पर
रोते हैं, जब हटता मोह।

लालच की मृगतृष्णा पर ही
कुछ कृतघ्न सैनिक नादान
आसफखाँ से मिले, हाय ! निज
खोकर वीर-धर्म की आन।

इतने पर भी रानी दुर्गा
हुई न मन में कुछ भी म्लान ;
प्रत्युत अल्प सैन्य ही लेकर
करती रही शत्रु-अवसान।

अवसर पाकर शत्रु - सैन्य ने
की बाणों की वृष्टि विशाल ;
फलतः दुर्गा की ग्रीवा पर
एक बाण आ लगा कराल।

हुआ प्रवाहित रुधिर वेग से,
किन्तु न दुर्गा हुई अधीर ;
प्रत्युत रानी का अब दुगुना
हुआ और भी सबल शरीर।

किया पुनः रणचण्डी बनकर
उसने यवनों का संहार।
नर-शोणित की नदी बहाकर
करने लगी पूर्ण मनुहार।

इतने में ही लगा दूसरा
बाण नेत्र में जैसे शूल।
धन्य! इसे भी दुर्गा, तुमने
फेंक निकाला जैसे फूल।

और, पुनः जुट गई युद्ध में,
कुछ भी हुई न मन में त्रस्त,
शत्रु-नाश में चण्डी-सी ही
रही पूर्णतः अब भी व्यस्त।

पर दुर्गा का प्रायः पूरा
घावों से भर गया शरीर।
थी अशक्त अब रानी दुर्गा
करुण कणों की बन तस्वीर।

युद्ध-भूमि में रानी दुर्गा
जिस हाथी पर थी आसीन,
थी गिरने को अवनी पर अब
उससे ही हा! होकर क्षीण।

सोचा—'जीत नहीं सकती अब
किन्तु बचाने को निज मान,
यवन-शत्रु के हाथों द्वारा
कभी न दूँगी अपने प्राण।

हिन्दू रमणी, क्षत्राणी यह
रखने को निज गौरव मान
कर सकती है हँसते-हँसते
अपने प्राणों का बलिदान!'

इतना सोचा, और शीघ्र ही
लेकर निज कर में करवाल,
गर्दन पर यों वार किया हा!
गिरा शीश भू पर तत्काल।

छोड़ अवनि पर अपनी सारी
यों निज अक्षय कीर्ति ललाम,
रानी दुर्गावती सिधारी
स्वर्ग-लोक अति सुषमा-धाम।

वहाँ, जहाँ हैं सस्मित-वदना
सुरबालाएँ पावन प्राण।
चिदानंदमय चेतन गति है,
होता कभी नहीं अवसान।

जरा-मरण भी जहाँ नहीं है,
दुःख नहीं या पतनोत्थान।
सदा सलोना सावन रहता
नंदन वन की छटा महान्,

यवनों के खेमों में छाया
यद्यपि एक नया उल्लास;
पर मँडले का घर-घर रोया,
सारा 'कोशल' हुआ उदास।

रम्य अमरकंटक की सारी
ललित लताएँ भी प्रतिवार
बिखराती हैं कीर्ति-सुरभि तव
हिला-डुला निज विजन-बयार।

इस वन के एकान्त प्रांत में
विहग वर्ग भी अति छविमान
तव समाधि पर सायं-प्रातः
आते-जाते गाते गान—

"कभी न विस्मृत होगी रानी,
तेरी कीर्ति-कथा अम्लान,
यवनों की मनमानी तुझसे
चल न सकी रहते तव प्रान।"

इसीलिए तो रेवा बाला
गाती है तेरे यश-गान—
"अक्षय है तेरी हे रानी,
धवल कीर्ति अनुपम, अम्लान।

"अमर हुई तू, अमर किया इस
भारत का तूने इतिहास।
खूब लड़ी तू, किया सदा ही
यवनों का तूने उपहास।

"जागृति की लहरों पर खेली,
झेले लाल लाल अङ्गार।
चली कँटीले पथ पर नित ही
मर मिटने की ले मनुहार।

गौरव-गरिमा अथच स्वत्व का
मानव जन्म-सिद्ध अधिकार
जीवित रहते अर्पित करना
था न तुझे किंचित् स्वीकार।'

मानव रे! तू इसीलिए अब
सुना न अपनी विषम व्यथा।
चलो, सुना दें, सुन लें थोड़ी
दुर्गा की यह अमर कथा।

पंचतत्त्वमय, जीर्ण-शीर्ण-सा
था यद्यपि पिञ्जर गंभीर,
किन्तु रही आभूषण जिसकी
सदा चमकती-सी शमशीर।

था जिसके अंतर में प्रतिपल
भीषण ज्वाला का प्रतिरूप।
सज वीरों का वेश चली जो
सदा प्रलय के ही अनुरूप।

वह अदम्य आकांक्षा उसकी
अंतस्तल की मर्म-व्यथा!
चलो, सुना दें, सुन लें थोड़ी
दुर्गा की यह अमर कथा।

शत्रु-दमन की आँधी से नित
था जिसको अनुपम अनुराग।
स्वप्नों में भी डिग न सकी जो
वीणा का सुन मादक राग!

धायँ-धायँ कर उसकी ही यह
आह ! चिता जलती है आज ।
जीवन के चिर सुन्दर कितने
जलते तिल-तिल सारे साज ।

उस रानी की आज कहानी
अंतस्तल की बनी व्यथा ।
चलो, सुना दें, सुन लें थोड़ी
दुर्गा की यह अमर कथा ।

नील गगन की सुषमा सारी
हँसनेवाली नित अम्लान ;
धुँधली-सी अब दीख रही हा !
कितनी निष्प्रभ एवं म्लान !

लेकिन अब भी जिसकी जलती
वीर-चिता की दाहक आग
इंगित करती एक कहानी—
'जीवन से क्या राग-विराग ?'

संसृति के कण-कण को जिसकी
अंत्य क्रिया से हुई व्यथा ।
चलो, सुना दें, सुन लें थोड़ी
दुर्गा की यह अमर कथा ।

श्यामल, चंचल, तीव्रवाहिनी
रेवा की लहरों के गान :
हर्ष-उत्स का वेग रोकते,
प्रकृति दीखती है म्रियमाण।

किंतु चिता की लपटें जिसकी
कहतीं—बढ़ो सदा अम्लान,
जन्म - मृत्यु का चलता रहता
जग में नियमित खेल महान्।

भूले पंछी मधुर बोल भी
कितनी दाहक मर्म-व्यथा!
चलो, सुना दें, सुन लें थोड़ी
दुर्गा की यह अमर कथा।

मत्त लास्य लीला से वंचित
भग्न चमकते तारे म्लान
व्योम-वक्ष को छेद रहे हैं
रानी का लखकर अवसान।

आह! इंदु भी रजत-करों से
करने को उसका सम्मान।
आँक रहा जग के कण-कण में
दुर्गा का अनुपम बलिदान।

हिला दिए शाही सिंहासन
जिसकी बलि ने वही व्यथा।
चलो-सुना दें, सुन लें थोड़ी
दुर्गा की यह अमर कथा।

उन्मीलित-सी आज कुमुदिनी
करती है कुछ मौन विलाप।
खोकर रानी दुर्गा को अब
गिरा रही आँसू चुपचाप।

रजनी भी तो अश्रु बहाती
शबनम का फैला परिधान—
जगती को हा! सुना रही है
चुपचुप गीले-गीले गान।

अस्त व्यस्त है प्रकृति सभी तो,
कण-कण में ही भरी व्यथा।
चलो सुनो दें, सुन लें थोड़ी
दुर्गा की यह अमर कथा।

—

# परिशिष्ट

## रानी दुर्गावती

### [ संक्षिप्त इतिहास ]

सोलहवीं शताब्दी में जब भारत पर मुगल सम्राट् अकबर राज्य कर रहा था, मध्यप्रदेश में रानी दुर्गावती एक छोटे से राज्य—गढ़मँडले की अधीश्वरी थी। महोबे के चन्देल राजा की कन्या दुर्गावती बड़ी रूपवती और वीरांगना थी। उसका विवाह गढ़-मँडले के राजा दलपतिशाह से हुआ था; परन्तु चार वर्ष के पश्चात् ही वह विधवा हो गई।

वह सती-प्रथा का युग था। परन्तु रानी ने सद्विवेक से काम लिया और अपने तीन वर्ष के बच्चे—राजकुमार वीरवल्लभ—को तथा अपनी प्रिय प्रजा को निराधार छोड़, पति के शव के साथ सती होना उचित नहीं समझा। उसने राज्य-दण्ड का गुरुतर भार स्वयं वहन किया और प्रजा को पुत्रवत् सुखी रक्खा।

अकबर का एक मनसबदार आसफखाँ, जो उज्जैन में था, अकबर के संकेतानुसार रानी दुर्गावती के राज्य को हड़प लेने का अवसर खोज रहा था। दलपतिसिंह के राज्य-काल में उसने गढ़-मँडले तथा अन्य स्थानों पर कई बार आक्रमण किए, परन्तु उसे सदा मुँह की खानी पड़ी। दलपतिसिंह का निधन हो जाने पर उसने अपने स्वप्न को सत्य देखने की आशा से गढ़-मँडले पर एक बार नहीं, बारह बार

आक्रमण किए; परन्तु वीर रानी दुर्गावती के कुशल सेना-संचालन और उसके अल्पसंख्यक किन्तु बहादुर सैनिकों के सामने वह कभी न टिक सका—उसे सदा पराजित होना पड़ा।

इस पराजय से क्षुब्ध होकर वह सम्राट् अकबर के पास गया और रानी दुर्गावती की वीरता तथा अपनी पराजय का समाचार दिया। सम्राट् अकबर स्वयं राज्य-विस्तार करना चाहता था, अतः उसे अपने मनसबदार की इस पराजय पर बहुत खेद हुआ। उसने अपना एक तोपखाना और कुछ सेना देकर आसफखाँ को पुनः सन् १५६४ ई० में गढ़-मँडले पर आक्रमण करने के लिए भेजा।

शत्रुओं के आक्रमण करते ही रानी दुर्गा के गोंड सैनिकों ने ऐसी मार मारी कि उनके पैर उखड़ने लगे। रानी दुर्गा स्वयं चण्डी बनकर मुगल-सेना को तलवार के घाट उतारने लगी।

राजकुमार वीरवल्लभ भी अब तक सयाना हो चुका था। वह भी अपनी वीर माता की भाँति अप्रतिम वीर था। वह अपने घोड़े पर सवार होकर यवन-सेना को मूली-गाजर की भाँति काटने लगा। अचानक ही उसका घोड़ा पंगु हो गया और यवनों ने इसी बीच राजकुमार को घेर लिया।

रानी दुर्गावती की क्रोधाग्नि में यह अन्याय देख, आहुति पड़ गई। वह भयंकर रूप धारणकर यवन-सेना का विनाश करने लगी और राजकुमार को किसी तरह अपने दुर्ग में भेज देने में सफल हुई।

रानी के सैनिक केवल तीर-कमान और बरछी-तलवारों से ही लड़ रहे थे, परन्तु आसफखाँ के पास ऐन वक्त पर तोपखाना आ पहुँचा। फिर क्या था, तोपों की मार के आगे, तीरों की बौछार कब तक काम देती?

इतने पर भी रानी दुर्गा रणचण्डी की भाँति संग्राम करती रही। वह अपने हाथी पर बैठकर प्रलयंकर बाण-वर्षा करने लगी। इतने में अचानक एक तीर आकर उसकी आँख में लगा, परन्तु इस शूल को भी उसने फूल की भाँति निकाल फेंका और बराबर युद्ध करती रही। धीरे धीरे उसका सारा शरीर बाणों से छिद गया। जब उसने देखा कि तोपों के सामने उसका बचना असम्भव है, तब उसने अपनी ही तलवार से स्वयं गर्दन पर वारकर वीरगति प्राप्त की। बरेला के निकट जिस स्थान पर यह धीरावीरा रानी दुर्गावती अपने हाथी से गिरी थी, वहाँ उसकी समाधि के रूप में एक चबूतरा बनवा दिया गया है।

देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना शीषदान देनेवाली धीरावीरा रानी दुर्गावती सदा अमर रहेगी।

——

# कुछ शब्दार्थ

## प्रथम सर्ग

नर-पुङ्गव = श्रेष्ठ पुरुष
द्युतिमान = छविमान
अक्षय = अमर
उपमान = तुलना
परिधान = वस्त्र
विधान = क्रम
अलौकिक = अद्वितीय
मज्जन = स्नान
उन्मत्त = जोशीला
पुलिनों = किनारों
सम्भार = साज
नियति = भाग्य
अभिशाप = शाप
प्रतिबिम्बित = चित्रित
रोली = श्री
भास्वर = चमकीला
मधुमास = वसन्त
सरणी = पंक्ति, मार्ग
शैवलिनी = सरिता
पादप = वृक्ष, विटप
चतुर्दिक = चारों ओर
फेनिल = झागपूर्ण
आह्वान = पुकार
मन्त्रणा = परामर्श
गगन-सौध = आकाश-महल
परिरम्भण = आलिंगन
पाण्डु = पीत
अम्लान = स्वच्छ
निर्वाण = अन्त
म्रियमाण = मृतवत्
वातायन = खिड़की
इन्दु-करों = चन्द्र-किरणों
शोषण = संताप देकर खींच लेना

## द्वितीय सर्ग

प्रलयङ्कर = विनाशकारी
काफ़िला = यात्रियों का झुण्ड
विस्फोट = फूट पड़ना
विहान = प्रभात
दिग्गज = आठों दिशाओं के हाथी जो पृथ्वी को दबाए रखते हैं।
कूटनीति = कपट-नीति
कतरा = खंड, टुकड़ा

व्योम-बाला = उषा
अनाहूत = अनिमंत्रित
धूमायित = धुँधाते रहना
मौर = मुकुट
रिसाला = अश्वारोही सेना
सकाल = शीघ्र

## तृतीय सर्ग

ओजस्वी = प्रभावशाली
उत्स = झरना
कल्प-वयन = कल्पना का ताना-बाना
मोह-अयन = मोह का घर
उपल = ओले
अनल-कण = अग्निकण
निष्प्राण = निर्जीव
विपथगा = पथभ्रान्त
शोणित = रक्त
मृत्युञ्जय = शङ्कर
अनवधान = असावधान
मनुहार = सत्कार
अवनी = पृथ्वी
करवाल = तलवार
कौशल = मध्यप्रदेश
सुषमा = परम शोभा
लास्य = भाव और ताल सहित नृत्य
उन्मीलित = खुली हुई
व्यवधान = रोड़ा